साध्वी श्रीउमरावकुँवरजी

जैन-संस्कृति में समाजवाद

'संस्कृत' शब्द से व्युत्पन्न, 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से निर्मित शब्द 'संस्कृति' का अर्थ है—'संस्कार-परिष्कार' अतः संस्कारों का समुच्चय ही 'संस्कृति' है. 'संस्कृति' इस छोटे से शब्द के अर्थ-कलेवर में किसी जाति अथवा राष्ट्रविशेष की समस्त आध्यात्मिक—आधिभौतिक सिद्धियां एवं तद्जन्य आस्था—विश्वास, साधना-भावना, आराधना-कामना समाहित हैं. प्रकृतिविजय के निमित्त उठे मानव-जाति के जय-केतु के मध्य में अंकित रहने वाला शब्द 'संस्कृति' ही है, जो किसी राष्ट्र की मूल चेतना, धर्म-दर्शन, तत्त्वचिंतन, एवं लौकिक-पारलौकिक एषणाओं को अपनी निजी विशेषताओं-मान्यताओं के साथ उद्घोषित करता है जिससे उसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थिर होती है.

चलते लोग सभ्यता और संस्कृति में विशेष अन्तर नहीं करते किंतु दोनों में बड़ा अन्तर है— ठीक वैसा ही जैसा कि 'इकाई' और 'समग्रता' में. यदि सभ्यता संचित जल-राशि है तो संस्कृति उस पर तरंगायित वीचि-विलास की प्रेरक शक्ति. 'लोचन मग रामहिं उर आनी, दीन्हें पलक कपाट सयानी.' इस सिद्ध कवि तुलसी की इस अमृत-वाणी में माता, है सीता व राम की जिस पुण्य-छवि को मन-मन्दिर में प्रतिष्ठित कर पलक-कपाट मूंद लेती है वह 'संस्कृति' एवं 'सभ्यता' है. राम का वह दैहिक रूप जो उसकी मुंदी पलकों के सम्मुख शेष रह जाता है. वस्तुतः 'सभ्यता' मधु-मक्खी का छत्ता है तो संस्कृति उसमें निहित मधु. सभ्यता वृन्ताधारित कंटकमय सदल पुष्प है तो संस्कृति केवल सौरभ-सुवास. सभ्यता-शरीर है, संस्कृति आत्मा. सभ्यता जीने का तरीका-सलीका, आचार-व्यवहार है तो संस्कृति रूहानियत-जिहानियत—'शाश्वत' चिंतन—सच्चिदानन्द समर्पित श्रद्धांजलि. सुसंस्कृत व्यक्ति निश्चित ही सुसभ्य होगा किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि सभ्य व्यक्ति सुसंस्कृत होगा ही.

'सब प्राणी सुख चाहते हैं, दुख से बचना चाहते हैं, जीने की अभिलाषा रखते हैं, कोई कितना ही दुःखी एवं सन्तप्त क्यों न हो, मरना नहीं चाहता. मृत्यु से हर प्राणी डरता है, दुःखी होता है. अतः किसी भी प्राणी को दुःख नहीं देना चाहिए, कष्ट नहीं देना चाहिए, सन्ताप नहीं देना चाहिए, किसी भी प्राणी को गुलाम नहीं बनाना चाहिए और न किसी प्राणी का वध करना चाहिए. 'जैन-संस्कृति अपने सुख के साथ दूसरे की सुख-शान्ति एवं हित के अधिकार को सुरक्षित रखने की बात कहती है. उस का यह वज्रघोष रहा है : 'सुख से रहो और सुख से रहने दो.' वस्तुतः जैन संस्कृति अपने सुख को, अपने हित को, अपने स्वार्थ को और अपनी आकांक्षाओं को विस्तृत बनाने की, उसे विश्व-सुख, विश्व-शान्ति एवं विश्व-हित में परिणत करने की संस्कृति है. यदि सही अर्थ में देखा जाए तो जैन-संस्कृति, विश्व संस्कृति या मानव-संस्कृति का ही दूसरा नाम है. क्योंकि, इसमें प्रत्येक मानव का हित एवं विकास निहित है.

विश्व में आज समाजवाद, साम्यवाद और सर्वोदयवाद की विशेष चर्चा है. क्योंकि सामन्तशाही एवं पूंजीवादी उत्पीड़न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं शोषण को समाप्त करने के लिये इन का उदय हुआ है. ये सब वाद व्यक्ति के हित की अपेक्षा समाज एवं राष्ट्र के हित को प्रमुखता देते हैं. अमीर-गरीब, छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, स्वामी-सेवक आदि के भेदों को तथा देश में चलने वाले शोषण को समूलतः नष्ट करना चाहते हैं. इन का मूल दृष्टिकोण यही है कि देश के सब व्यक्तियों को जीवन-विकास के लिये समान साधन मिलें, सब को सुख-शान्ति से रहने का अवसर मिले, खाने के लिये पर्याप्त भोजन और पहनने के लिये वस्त्र मिलें. देश में न कोई भूखा-नंगा रहे, न कोई अभावग्रस्त हो. किसी प्रकार की उत्पीड़ा न हो, पीड़ाकारी न हो. कोइ पीड़ित न हो. देश में ऐसी स्थिति न रहे कि एक ओर धन के अम्बार लगे हों, सम्पत्ति के पहाड़ खड़े हों और दूसरी ओर अभावों का नंगा नाच हो. एक वर्ग का हित और सुख दूसरे वर्ग का विरोधी न हो. वर्गसंघर्ष का आधार ध्वस्त हो जाय और मानवजाति पारस्परिक सहयोग से प्रगति की ओर प्रयाण करे.

जैन-संस्कृति के लिये यह स्वर नया नहीं है. यदि हम सुदूर इतिहास की सरणियां न भी दोहरायें तो भी जैन-संस्कृति का पच्चीस सौ वर्ष का इतिहास हमारे सामने है. उस का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन-संस्कृति मानव-मानव के बीच भेद की दीवार को कतई नहीं मानती. वह प्रत्येक मानव को, भले ही वह किसी देश, रंग, लिंग, प्रान्त, वर्ग, व जाति का क्यों न हो, मानवता के नाते, समान मानती है.[1] वह जातिपूजा में नहीं, गुणपूजा में विश्वास करती है और गुणों के आधार पर ही उच्चत्व-नीचत्व को स्वीकार करती है ![2]

उसके अनुसार सब को समान आत्म-विकास करने का अधिकार है अतः किसी व्यक्ति का अपमान—तिरस्कार करना, उसे विकास करने का अवसर नहीं देना, उसका ही नहीं, बल्कि अपना एवं समस्त मानव-जाति का तथा परमात्मा का अपमान करना है.

जैन-संस्कृति निःश्रेयस् की प्रेरक है. उसकी परिधि मानव तक ही नहीं, प्राणी मात्र तक विस्तृत है. वह प्राणी-मात्र का उदय-हित और कल्याण चाहती है. उसकी दृष्टि में विश्व के, सभी प्राणी समान हैं. अतः प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि उन्हें स्वतंत्रता-पूर्वक जीने दे, स्वतन्त्रता से अपना विकास करने दे.

जैन-संस्कृति और साम्यवाद :—साम्यवाद के सिद्धांत जैन-संस्कृति से बहुत कुछ मिलते हुए हैं. साम्यवाद समाज में चल रहे शोषण, उत्पीड़न एवं वर्ग भेद को समाप्त करके राष्ट्र के सब व्यक्तियों का विकास करना चाहता है. वह मनुष्य-मनुष्य के बीच जातीय भेद की दीवार स्वीकार नहीं करता. आर्थिक वैषम्य को सहन नहीं करता. जैन-संस्कृति भी इस मन्तव्य को स्वीकार करती है. फिर भी जैन-संस्कृति और साम्यवाद में मौलिक सैद्धान्तिक एवं कार्य पद्धति संबन्धी अन्तर है. साम्यवाद भौतिकवाद पर आधारित है. वह आत्मा अर्थात् व्यक्ति की सर्वथा उपेक्षा करता है, एकान्ततः समाज की सत्ता स्वीकार करता है. वह शस्त्र की ताकत को ही सर्वोपरि मानता है अतः तलवार की धार से या बम की विषाक्त मार से समानता लाना चाहता है. वह वर्गभेद को समाप्त करने के लिये पाशविक बल का प्रयोग करने के पक्ष में है. परन्तु जैन-संस्कृति इस का समर्थन नहीं करती. उसका मूल आधार भौतिकवाद नहीं, अध्यात्मवाद है. वह व्यक्ति और समाज के अधिकारों में सामंजस्य स्थापित करती है, आत्मिक शक्ति को सर्वोपरि मानती है. अतः वह स्वेच्छात्याग की उदात्त भावना के द्वारा विभेद की दीवारों को गिराना चाहती है, वह अहिंसा, प्रेम, स्नेह, क्षमा, सहिष्णुता, तप और त्याग द्वारा मानव जीवन में साम्य की सरस, शीतल एवं मधुर सरिता बहाना चाहती है. इस प्रकार जैन-संस्कृति हिंसा में नहीं, प्रेम में विश्वास रखती है. पशुबल में नहीं, आत्मबल में विश्वास रखती है. और प्रेम-स्नेह एवं त्याग के द्वारा स्थापित की गई समानता को स्थायी मानती है.

जैन-संस्कृति और सर्वोदय :—आधुनिक युग में सर्वप्रथम गांधीजी द्वारा प्रयुक्त सर्वोदय शब्द भारतवर्ष के लिये नूतन नहीं,

---

१. मनुष्यजातिरेकैव जातिकर्मोदयोद्भवा—आचार्य जिनसेन.

२. सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो, न दीसइ जाइविसेस कोइ.—उत्तराध्ययन.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिरपुरातन है. जैन परम्परा के युगप्रवर्तक प्रतिभाशाली आचार्य समन्तभद्र ने अब से लगभग पन्द्रह सौ शताब्दी पूर्व इस शब्द का प्रयोग किया था :

'सर्वोपदामन्तकरं दुरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं त्वदीयम्'. यहां आचार्य ने जिन-तीर्थ को 'सर्वोदयतीर्थ' कह कर उसे ही समस्त विपत्तियों का अन्त करने वाला बतलाया है. किन्तु आधुनिक युग में सर्वप्रथम गांधीजी ने इस शब्द का प्रयोग किया. उन्होंने पाश्चात्य विचारक रस्किन की 'एन टू दिस लास्ट' पुस्तक का 'सर्वोदय' नाम से अनुवाद किया.

सर्वोदय शब्द 'सर्व' और 'उदय' दो शब्दों के संयोग से बना है. इसका अर्थ होता है—सब का उदय. आचार्य समन्तभद्र ने और गांधीजी ने भी इसी अर्थ में इस का प्रयोग किया था और इसका आधार अहिंसा, प्रेम, त्याग एवं सहिष्णुता को माना था.

आज तो सर्वोदयसमाज का भी निर्माण हो गया है. उसका कहना है कि विश्व दो वर्गों में विभक्त है—उच्च वर्ग और निम्न वर्ग, या अमीर और गरीब. आज सुख-साधनों एवं सम्पत्ति के सभी स्रोतों पर प्रथम वर्ग का अधिकार है. इस से उस के जीवन में अहंकार, निर्दयता, शोषण एवं विलासिता आदि मनोविकारों की बाढ़-सी आ गई है. विकारों के ढेर के नीचे उस की आत्मा दब गई है और उस की मानवता को अमानवीय एवं राक्षसी मनोवृत्तियों ने आवृत कर दिया है. अतः वह पतन की ओर फिसलता जा रहा है और द्वितीय वर्ग की दयनीय दशा तो सब के सामने स्पष्ट ही है. इस वैषम्य की स्थिति में सच्ची शान्ति की संस्थापना संभव नहीं है. इसलिए सर्वोदय समाज चाहता है कि धनिक वर्ग का भी उदय हो और निर्धन वर्ग का भी. धन-वैभव के गुरुतर बोझ के नीचे दबी हुई पूंजीपति की अन्तरात्मा में मानवीय भावना का उदय हो, वह विकारों से ऊपर उठ कर दूसरे वर्ग के हित को भी सोचे-समझे और मानवजाति के हित को अखंड मानकर उस के लिये कार्य करे. प्रत्येक मानव विवेक पूर्वक कार्य करे, जिस से सब का हित हो, किसी के स्वार्थ को आघात न लगे. कोई किसी का अनिष्ट करने की भावना न रखे और न ऐसा कदम उठाए जिससे दूसरे व्यक्ति के सुख में बाधा उत्पन्न हो. कदाचित् संघर्ष की स्थिति आजाय तो उसे हिंसात्मक रूप न देकर प्रेम-स्नेह एवं मैत्री भावना को कायम रखते हुए दूर किया जाए.

जैन-संस्कृति भी इस विचार को स्वीकार करती है. दोनों की विचारधारा में बहुत-कुछ समानता होने पर भी कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर है. पाश्चात्य विचारक मानते हैं : The greatest good for greatest number.

इसके अनुसार अधिक लोगों का अधिकतम लाभ ही उनका आदर्श है. सर्वोदय विचारधारा इससे एक डग आगे बढ़ती है और मानती है कि मानव मात्र का उदय हो, मानव मात्र का हित हो, मानव मात्र का उन्नयन हो, मानव मात्र को समान सुख-साधन उपलब्ध हों और सब को समान रूप से विकसित होने का अवसर मिले.

परन्तु जैन-संस्कृति का सिद्धान्त इससे भी अनेक कदम आगे है. जैन विचारक केवल मानव का ही नहीं, प्रत्युत प्राणी-मात्र का उदय चाहते हैं. जैन-संस्कृति की यह मान्यता है कि विश्व का प्रत्येक प्राणी स्वतन्त्र है और सुख की अभिलाषा रखता है. अतः किसी भी प्राणी के सुख में, विकास में बाधा उपस्थित न की जाए.

जैन-संस्कृति की दृष्टि में मनुष्य ही सब कुछ नहीं है. उसके अतिरिक्त अन्य असंख्य प्रकार के जो प्राणी विश्व में हैं, वे भी हमारे ही बृहत् परिवार के सदस्य हैं. उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती. उनके अधिकारों को भी स्वीकार किया जाना चाहिए. इसके बिना सम्पूर्ण न्याय एवं बन्धुता की प्रतिष्ठा संभव नहीं है. जब तक मनुष्य, मनुष्येतर प्राणियों के प्रति बन्धुभाव स्थापित नहीं करेगा और उनका उत्पीड़न करता रहेगा तब तक मनुष्य-मनुष्य के बीच भी उत्पीड़न चालू रहेगा. वस्तुतः भगवान् महावीर का शासन 'सर्वोदय-शासन' है. उन के शासन में किसी एक के उदय का नहीं, प्रत्युत सब के अभ्युदय का, सब के निःश्रेयस् का पूरा खयाल रखा गया है. उसमें नारी-पुरुष, अमीर-गरीब, बालक-वृद्ध, कीड़ी-कुंजर आदि किसी के भी प्रति पक्षपात नहीं है. आत्मविकास की दृष्टि से दुनिया की समस्त आत्माएँ एक समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं और सब अपने आप में स्वतन्त्र एवं अनन्त शक्ति से सम्पन्न हैं. अतः सब के समान अधिकार हैं और सब को प्रगति करने का अवसर मिलना चाहिए.

*जैन-संस्कृति में युग-युगान्तर से सर्वोदय का महत्त्व रहा है. सम्पत्ति एवं सुखसाधनों के वितरण के लिये भी जैन विचा-*रकों ने संग्रह बुद्धि की भावना को पाप कहा है.

भगवान् महावीर का यह वज्रघोष रहा है—'असंविभागी न हु तस्स मोक्खो' जो व्यक्ति अपने साधनों का संविभाग नहीं करता, वह मुक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता. इस का स्पष्ट अर्थ यह है कि जो अपने सुख एवं हित के साथ प्राणी-मात्र के हित और सुख का खयाल रखता है और उन्हें आगे बढ़ने में सहयोग देता है, वही मुक्ति पा सकता है. यत्र-तत्र-सर्वत्र से समेट-समेट कर अपने भंडार भरने वाला तथा समस्त सुख-साधनों पर अपना एकाधिपत्य रखने का इच्छुक मुक्ति नहीं पा सकता. मुक्ति लेने में नहीं, देने में है. जो अपने सुख को प्राणी-मात्र के सुख में परिणत कर देता है और अपने 'अहम्' को सारे विश्व में फैला देता है, वही पूर्ण सुख पा सकता है और उसी को शाश्वत एवं अखण्ड शान्ति का लाभ होता है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org